इस्लाम और इंसानी हुक़ूक़

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादः सैय्यद सुफ़यान अहमद नदवी

(10)

पिछले मज़मून में ईसाई फ़ौजियों के हाथों यरोशलम में हुए क़त्ले आम के दृश्य को खुद एक ईसाई पादरी की ज़बानी पेश किया गया और वह कहने पर मजबूर हो गया कि इन ज़ालिमों में हज़रत ईसा का सच्चा मानने वाला एक भी न था। इसी को देखते हुए उस ईसाई पादरी ने मुसलमानों की रहमदिली की तारीफ़ की कि जब मुसलमानों का विजयी लश्कर यरोशल में दाखिल हुआ था तो किसी भी बेगुनाह शहरी को क़त्ल नहीं किया गया। इस तरह उसने सलाहुद्दीन अय्यूबी की भी तारीफ़ की कि यरोशलम की जीत के बाद उनके सुलूक में और मुसलमानों के साथ ईसाईयों के सुलूक में ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ था। मुसलमान फ़ौजों ने ऐसा कोई भी अमानवीय क़दम नहीं उठाया कि जैसे ईसाई करते थे। इस्लामी फ़ौज ने थोड़ा सा फ़िदया (टैक्स) लेकर सबको आज़ाद कर दिया और कोई भी क़त्ल नहीं किया गया। अब अमरीका का वह फ़सादी पादरी जिसने इस्लाम को ज़ुल्म और ज़्यादती का मज़हब बताते हुए क़ुरआन मजीद की बेइज़्ज़ती का बुरा काम अंजाम दिया है, अपने मज़हब वाले और अपने ही जैसे पादरी का बयान पढ़कर खुद फैसला कर ले कि ज़ुल्म और ज़्यादती, क़त्ल और फ़साद किस तरफ़ है और रहम और मेहरबानी और मुहब्बत किस तरफ़?

इस्लाम में सबसे बड़ा गुनाह ज़ुल्म और सबसे बड़ी इबादत किसी मज़लूम सताए हुए, कमज़ोर और मदद चाहने वाले की मदद करना है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह का इरशाद है, मतलब- ''ज़ालिमों के लिए नजात नहीं है'' (सूरए इन्आम, आयत-21) दूसरी जगह पर इरशाद है, मतलब- ''किसी ने अगर एक इंसान को भी बिना किसी जुर्म और ग़लती के क़त्ल कर दिया तो जैसे उसने पूरी इंसानियत को क़त्ल कर दिया'' (सूरए माएदा, आयत-32) आयत में न मुस्लिम का शब्द है और न मोमिन, बल्कि अगर कोई भी ख़ुदा का बन्दा बेगुनाह क़त्ल हो गया तो जैसे पूरी इंसानियत का क़त्ल हो गया। एक दूसरी जगह एलान हो रहा है, मतलब- ''क़रीब है कि ज़ालिमों को उनका अंजाम मालूम हो जाएगा'' (सूरए शोअरा, आयत-227)। हर गुनाह की सज़ा आख़िरत में है, इसलिए सारे बेईमान, रिश्वत खाने वाले, चोर खुले आम फिर रहे हैं और सीना तान कर कहते हैं कि हमारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं पा रहा है। उन्हें ख़बर नहीं कि अल्लाह ने उन्हें छूट दे रखी है। उनकी सज़ा यहाँ नहीं, बल्कि वहाँ है जहाँ की सज़ा से कोई बच नहीं सकता, लेकिन सिर्फ़ ज़ुल्म ऐसा गुनाह है जिसकी सज़ा दुनिया में भी है और आख़िरत में भी। इसलिए पाक आयत में क़रीब में आने वाले ज़माने का शब्द इस्तेमाल किया गया है, यानी इसी दुनिया में ही ज़ालिम को उसके ज़ुल्म की सज़ा मिल कर रहेगी और इस से मिलती-जुलती हदीस शरीफ़ भी है। रसूलुल्लाह[स०] ने इरशाद फ़रमाया कि अल्लाह तआला का इरशाद है, मतलब- ''क़सम है मेरे इज़्ज़त व जलाल की कि मैं दुनिया और आख़िरत दोनों में ज़ालिम से ख़ुद बदला लूँगा और उन से भी जो ज़ालिम की मदद करेंगे''।

इस्लाम में किसी भी मुसलमान की खुलेआम बुराईयाँ और कमियाँ बयान करने से सख़्ती से रोका गया है और क़ुरआन मजीद ने इसको अपने मरे हुए भाई का गोश्त खाने की तरह बताया है, मगर ज़ालिम

की बुराई बयान करने की मज़लूम को इजाज़त दी गई है। क़ुरआन मजीद में इरशाद होता है, मतलब- ''अल्लाह ये नहीं पसन्द करता कि कोई किसी की खुलेआम बुराईयाँ बयान करे, मगर सिर्फ़ वह जो मज़लूम है''। (सूरए निसा, आयत-148) यानी सिर्फ़ मज़लूम को इजाज़त है कि वह ज़ालिम के ख़िलाफ़ एहतेजाज की आवाज़ उठा सकता है। इस पाक आयत से उन फ़तवों की हक़ीक़त खुल जाती है, जो ज़ालिम हुकूमतों की हिमायत में आते हैं और आ रहे हैं कि हुकूमत कैसी भी हो, उसके ख़िलाफ़ एहतेजाज करना हराम है। ये सारे फ़तवे खुलेआम क़ुरआन मजीद की मुख़ालफ़त कर रहे हैं।

क़ुरआन की आयतों के अलावा अंगिनत हदीसें हैं, जो ज़ुल्म को सबसे बुरा गुनाह साबित करती हैं। एक हदीस तो ऊपर बयान हो चुकी है, इसी से मिलती-जुलती एक दूसरी हदीस है जो बहुत ध्यान देने वाली है, जिस तरह से बारिश का एक तेज़ छींटा गंदगी बहा ले जाता है, उसी तरह ये हदीस इस्लाम पर लगाए गए सारे इल्ज़ामों को पाक और साफ़ कर देती है। रसूल[स०] का इरशाद है मतलब- ''मज़लूम की बद-दुआ से डरो चाहे वह मज़लूम काफ़िर ही क्यों न हो'' क्योंकि मज़लूम की फ़रियाद में कोई चीज़ रुकावट नहीं बनती। (मुन्तख़ब मीज़ानुल हिक्मत, पेज-35) हदीस एलान फ़रमा रही है कि काफ़िर का कुफ़्र भी अगर वह मज़लूम है, उसकी बद-दुआ को अल्लाह तक पहुँचने से नहीं रोकता। इस से अंदाज़ा कीजिए कि इस्लाम के क़ानून में मोमिन या मुसलमान बन्दे पर ज़ुल्म करना तो बहुत दूर की बात है, किसी ग़ैर मुस्लिम और काफ़िर पर भी ज़ुल्म की इजाज़त नहीं है। कोई भी मज़लूम चाहे काफ़िर ही क्यों न हो अल्लाह उसकी फ़रियाद सुनेगा और ज़ुल्म करने वाले चाहे मुसलमान ही क्यों न हो, अल्लाह की सज़ा से बच नहीं सकता। काश इस हदीस पर वह मुल्ला साहेबान भी ग़ौर कर लें जो कुफ्र के फ़तवे देकर क़त्ल को वाजिब क़रार देते हैं। एक और नायाब और अनोखी मुबारक हदीस जो इस्लाम की बुनियादी फ़िक्र को सामने लाती है, मतलब- ''कोई भी इंसान अगर मुसलमान को मदद के लिए पुकारे और कोई मुसलमान सुन कर भी मदद न करे तो वह मुसलमान नहीं है''। (उसूले काफ़ी, जि-3 पे-239) रसूल[स०] के इस इरशाद में भी मोमिन या मुसलमान का शब्द नहीं है, यानी अगर काफ़िर भी मदद के लिए पुकारे तो मुसलमान पर मदद करना वाजिब है, वरना वह इस्लाम से निकल जाएगा।

इबादतों में सबसे बड़ी इबादत नमाज़ है, जिसके लिए रसूल का इरशाद है कि अगर नमाज़ क़ुबूल है तो सारे काम क़ुबूल हैं, मगर दूसरी तरफ़ शरीअत है कि अगर कोई नमाज़ पढ़ रहा है और नमाज़ पढ़ने में नज़र पड़ गई कि कोई अंधा गढढे में गिरने जा रहा है तो नमाज़ तोड़ना वाजिब हो जाएगा। इसी तरह अगर किसी की आवाज़ सुन ले कि मैं डूब रहा हूँ मुझे बचा लो तो यह डूबने वाला चाहे सख़्त तरीन काफ़िर ही क्यों न हो नमाज़ तोड़ना वाजिब हो जायगा। अब नमाज़ पढ़ना नाजाएज़ है और उस काफ़िर को बचाना वाजिब है। दूसरे शब्दों में अब नमाज़ इबादत नहीं, अब उस काफ़िर को बचाना इबादत बन जाएगा। ये है इस्लाम और ये है इस्लाम का मेहरबानी भरा क़ानून।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 8 अप्रैल 2011[ई०])

(11)

पिछले मज़मून में तफ़सील से इस इल्ज़ाम का जवाब दिया गया कि ''इस्लाम ज़ुल्म और ज़्यादती का मज़हब है और उसमें इंसानी हुक़ूक़ की कोई रिआयत नहीं''। क़ुरआनी आयतों और कई हदीसों से पूरे तौर पर साबित हुआ कि इस्लाम में सबसे बुरा गुनाह ज़ुल्म है और अल्लाह तआला ने एलान फ़रमाया है कि ज़ालिम और उसकी मदद करने वाले से दुनिया और आख़िरत दोनों में बदला लूँगा चाहे ज़ालिम मुसलमान और मज़लूम काफ़िर ही क्यों न हो। जाहिलियत के ज़माने में अरब वालों का तरीक़ा ये था कि वह अपने क़बीले और रिश्तेदारों की हिमायत करते थे, चाहे वह ज़ालिम हों या मज़लूम, वह ये नहीं देखते थे कि ज़्यादती किस तरफ़ से है। आपसी अहद भी इस बुनियाद पर होते थे कि एक दूसरे का साथ देना है चाहे ज़ुल्म ही में शामिल क्यों न हों, मगर इस्लाम ने तास्सुब के इस बुनियादी ख़याल को बदल दिया। पहले तो क़ुरआन मजीद ने एलान फ़रमाया,

मतलब– ''नेकी और तक़वे की बुनियाद पर एक दूसरे की मदद करो और देखो गुनाह और ज़ुल्म व ज़्यादती में एक दूसरे की मदद करने वाले न बनना''। (सूरए माएदा, आयत-2) ये ऐसा फैसले वाला उनवान है जिसे किसी भी झूठे मतलब या बहानेबाज़ी से बदला नहीं जा सकता। फिर रसूल[स०] ने मुसलमानों को ख़िताब करते हुए फ़रमाया, ''अपने भाई की मदद करो चाहे मज़लूम हो चाहे ज़ालिम'' लोगों ने हैरत से पूछा ऐ अल्लाह के रसूल[स०] आप क्या फ़रमा रहे हैं? मज़लूम की मदद तो करना चाहिए, मगर ज़ालिम की मदद क्यों करें। मतलब ये था कि ये जाहिलियत के ज़माने का क़ानून था और आज तो इस्लाम का दौर-दौरा है। ये आप क्या इरशाद फ़रमा रहे हैं? अल्लाह के रसूल[स०] ने खुलकर बताया कि अगर अपना कोई भाई ज़ुल्म कर रहा हो तो उसकी मदद ये है कि उसे ज़ुल्म करने से रोक दो। उसका हाथ पकड़ लो और ज़ुल्म न करने दो। क़ुरआन की आयत और रसूल[स०] के फ़रमान ने ऐसे तमाम मुआहदों को बातिल क़रार दिया कि जिनकी वजह से ज़ुल्म में शिरकत हो जाए। ज़ुल्म से बचाव के लिए कहते तो मुसलमान आपसी अहद कर सकते है। किसी पर ज़ुल्म करने के लिए किसी अहद को बहाना नहीं बनाया जा सकता। ऐसा कोई अहद जाहिलियत और अरबों के ज़माने की पुरानी रंजिश की यादगार हो तो हो सकता है, क़ुरआन मजीद और रसूल[स०] की तालीमात का आईना नहीं हो सकता।

मुनासिब होगा कि ज़ुल्म के ख़िलाफ़ पैग़म्बरे इस्लामस० के कुछ और इरशाद पेश कर दिये जाएं- ''जो ज़ुल्म करने वाले का साथ देगा वह मुजरिम है और अल्लाह मुजरिमों से बदला लेगा'', ''ज़ालिम के चेहरे पर जानबूझ कर निगाह डालना बड़ा गुनाह है'' अब इंसाफ़ कीजिए कि जब ज़ालिम के चेहरे पर निगाह डालना बड़ा गुनाह है तो ज़ालिम का साथ देना और इस से बढ़कर खुद ज़ुल्म करना कितना बड़ा गुनाह हो सकता है। ''ज़ालिम का साथ देने वाला इस्लाम से बाहर है''। अब पढ़ने वाले खुद फ़ैसला करें कि जब रसूल[स०] के कथन के हिसाब से ज़ालिम का साथ देना इस्लाम से बाहर कर देता है तो खुद ज़ालिम इस्लाम पर कैसे बाक़ी रह सकता है? ये साथ देना ज़बान से भी हो सकता है और क़लम से भी और ज़ुल्म के क़िस्से सुनकर ख़ामोश रहकर भी। अब जो लोग ज़ालिमों की हिमायत में ज़बान और क़लम इस्तेमाल करते हैं या ज़ुल्म पर ख़मोशी इख़्तियार कर लेते हैं वह ख़ुद अपने अंदर झांक कर देख लें।

इस्लाम में मज़लूम और सताए हुए लोगों के लिए मुसलमान होना शर्त नहीं है। बस मज़लूम और मदद माँगने वाला हो तो उसकी मदद हर मुसलमान पर अपनी ताक़त के हिसाब से वाजिब है। यही इस्लामी तरीक़ा है। और यही मुहम्मदी सुन्नत है। दलील के तौर पर एक तारीख़ी वाक़िआ पेश किया जाता है। शुरु इस्लाम का ज़माना है और अभी लोग रसूल[स०] को शक्ल से ज़्यादा नहीं पहचानते हैं। औस के क़बीले का एक शख़्स अपना ऊँट बेचने मक्का आता है। इत्तेफ़ाक़ से अबूजहल ने ऊँट पर तो क़ब्ज़ा कर लिया मगर क़ीमत देने से इनकार कर दिया जैसे कि आज कल दादगीरी होती है। इलाक़े के दादा हैं जिस होटल में चाहा अपने साथियों के साथ खा-पी लिया और मूँछों पर ताव देते हुए बाहर निकल आए, होटल वाले की हिम्मत नहीं कि बिल पेश कर सके। जिस दुकान पर गए जो दिल चाहा ले लिया, पैसे देने का कोई सवाल नहीं और दुकानदार की हिम्मत नहीं कि माँग सके। अबूजहल अरब का सरदार है। आने वाला ग़रीब परदेसी है। इसलिए ऊँट हड़प कर लिया अब क़ीमत वसूल कर सको तो कर लो, वह ज़्यादती का मारा रोता हुआ काबे के क़रीब पहुँचा। देखा कुछ अरब के सरदार वहाँ इकटठा हैं। सारा हाल उन से बयान किया और मदद माँगी। उसी वक़्त हुज़ूर सरवरे काएनात मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] एक कोने में इबादत में लगे हुए थे। अरब के इन काफ़िर सरदारों को एक ख़तरनाक मज़ाक़ सूझा। रसूल[स०] की तरफ़ इशारा करके कहा कि ये सामने जो शख़्स अपने तरीक़े से इबादत कर रहा है उसकी अबूजहल से बहुत दोस्ती है, अगर ये सिफ़ारिश कर देगा तो तुम्हारी रक़म मिल जाएगी, दो ही सूरतें हो सकती थीं या तो रसूलुल्लाह[स०] अबूजहल की दुश्मनी की वजह से मदद से इनकार कर देते तो उन्हें कहने का मौक़ा मिलता कि मज़लूमों के बड़े हमदर्द बनते हैं मगर मदद नहीं की

और अगर मदद के लिए जाएंगे तो सिर्फ़ बेइज़्ज़ती हाथ लगेगी। दोनों तरह मज़ाक़ उड़ाने का मौक़ा मिलेगा। रसूलुल्लाहस॰ ने उस मज़लूम की फ़रियाद सुनी, ये नहीं पूछा कि मुसलमान हो या नहीं, कलमा पढ़ा है या नहीं। फौरन इबादत छोड़कर उसके साथ चल दिये अरब के सरदारों ने पीछे-पीदे अपना एक जासूस भेज दिया, रसूलुल्लाहस॰ ने अबूजहल का दरवाज़ा खटखटाया। उसने पूछा कौन है? फ़रमाया, मुहम्मदस॰ हूँ। इतिहास कहता है दौड़ता हुआ आया दरवाज़ा खोला, अबूजहल के चेहरे का रंग उड़ा था। ऐ मुहम्मदस॰ क्या बात है क्यों आए हो? फ़रमाया, फ़ौरन इसके ऊँट की क़ीमत अदा करो। कहा, इतनी इजाज़त दो कि घर के अंदर से ले आऊँ। दौड़ता हुआ गया पूरी क़ीमत लाकर दी। ऐ मुहम्मदस॰ और कोई हुक्म हो तो बताओ। फ़रमाया, आइन्दा कोई ऐसी हरकत न करना। क़बीले औस का वह शख़्स खुशी-खुशी मक्का के सरदारों के पास पहुँचा और शुक्रिया अदा किया कि तुम लोगों ने बिल्कुल सही आदमी को भेजा था। मेरी रक़म फ़ौरन मिल गई। उनकी हैरत की इन्तेहा न रही। जिसको जासूसी के लिए भेजा था। उस से पूछा कि तुम वाक़िआ बताओ। जासूस ने कहा, वह जिसे मैं सोच भी नहीं सकता था, मुसलमानों के रसूलस॰ ने जैसे ही अबूजहल को आवाज़ दी वह दौड़ा हुआ निकल आया इस तरह से कि चेहरे का रंग उड़ा हुआ था, जो मुहम्मदस॰ कहते जाते थे वह करता जाता था। सरदारों ने देखा सामने से अबूजहल चला आ रहा है। मक्का के सरदार झल्लाकर बोले, तुझे मौत आ जाए तुझे हुआ क्या था? अबूजहल बोला मैं खुद नहीं बता सकता कि मुझे क्या हो गया था। मुहम्मदस॰ की आवाज़ सुनते ही ऐसा लगा मेरी जान निकल जाएगी। बस जैसा वह कहते गए मैं करता गया। इस वाक़िए की ख़ास बात ये है कि अबूजहल रसूले इस्लामस॰ की रूहानी ताक़त से इतना घबरा गया कि अगर फ़रमाते कि कलमा पढ़ लो तो पढ़ लेता, मगर मज़लूम की मदद के लिए तो ताक़त का इस्तेमाल हुआ वह रूहानी ही सही मगर कलमा पढ़वाने के लिए नहीं, क्योंकि इस्लाम सख़्तीसे इस नज़रिये पर क़ायम था कि ''दीन में कोई ज़बरदस्ती नहीं''। अल्लाह के रसूलस॰ ने मिसाल बना दी कि देखो मज़लूम और सताए हुए की मदद करो चाहे वह काफ़िर ही क्यों न हो, हमारे कुछ मुसलमान बादशाह भी काफ़िरों की मदद फ़रमाते हैं, मगर मज़लूमों की नहीं, बल्कि ज़ालिमों की वह भी मुसलमानों पर ही ज़ुल्म ढाने के लिए।

(जारी)

शेष....... उसूले दीन

हदीसों (रसूल का कथन हदीस कहलाता है) में यह भी बताया कि मेरे बारह ख़लीफ़ा होंगे। इन बारह के नाम कुछ ख़ास सहाबियों (साथियों) से खुद आपने भी बताए और इनमें से हर एक इमाम (ख़लीफ़ा) भी अपने बाद के इमाम का नाम स्पष्ट रूप से बताता रहा। इस प्रकार रसूल के बाद इस इलाही हुकूमत (ऐश्वरीय शासन) के शासक नियुक्त होते रहे जिसकी नींव रसूल के द्वारा डाली गई थी।

सांसारिक ख़लीफ़ा

हज़रत रसूलुल्लाह के देहान्त के बाद मुसलमानों ने राजनैतिक अभिप्रायों के लोभ में इलाही हुकूमत के विरूद्ध अपने लिए शासक चुन लिए। चूँकि ये 'कारवाई' इस्लामी क़ानून के विरूद्ध थी इसलिए पैग़म्बर के कुटुम्ब वालों और कुछ धर्म के पक्के सहाबियों (पैग़म्बर के साथियों) ने इन ख़लीफ़ाओं के शासन को स्वीकार नहीं किया और इस्लाम के सच्चे मानने वालों ने आज तक उन हुकूमतों को स्वीकार नहीं किया है।

(जारी)